सीधा संवाद

दलित मुक्ति दर्शन
समस्याएं और संभावनाएं

डॉ. सर्वेश कुमार मौर्य

जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय से एम.फिल. करते हुए आपने 'यथार्थवाद और दलित साहित्य चिंतन' में शोध लिखा। आपने पीएच. डी. की उपाधि हेतु 'अमेरिकी ब्लैक साहित्य और हिंदी दलित साहित्य: तुलनात्मक अध्ययन' पर शोध कार्यकिया।

हिंदी दलित एकांकी संचयन, दलित नाटक की सैद्धांतिकी, दलित नाटक की आलोचना, दलित लोक नाटक, साहित्य और दलित दृष्टि (संपादित), दलित मुक्ति दर्शन, दलित साहित्य चिंतन, दलित साहित्य विमर्श (सह-संपादन) का कार्य किया। आप एनसीईआरटी में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। संपर्क : 9999508476

मुक्ति की बात करें तो भारतीय दार्शनिक परम्परा में मुक्ति के तीन विशेष संदर्भ प्रचलित हैं- पहला धार्मिक-आध्यात्मिक मुक्ति, दूसरा सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति और तीसरा भौतिक-आर्थिक मुक्ति। भारतीय दर्शन में धार्मिक-आध्यात्मिक मुक्ति से अर्थ है- जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति पाना अर्थात मोक्ष पाना। इस धारणा में यह माना जाता है कि मनुष्य का जन्म मनुष्य के रूप में इसीलिए हुआ है कि वह अच्छे कर्म करे और अच्छे कर्म करने के बाद जिस परमसत्ता का वह अंश है उससे जाकर मिल जाए अर्थात अंश और अंशी का मिलन ही अंतत: धार्मिक-आध्यात्मिक मुक्ति है। हमारे भारतीय धर्मशास्त्रों में इसके बारे में विस्तार से बताया समझाया गया है और यह कहा गया है कि जीव अज्ञान के कारण ही बार-बार जन्म लेता और मरता है। इस जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाने का नाम ही मोक्ष है। शास्त्रकारों ने जीवन के चार उद्देश्य बताएं हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें से मोक्ष को परम अभीष्ट अथवा परम पुरूषार्थ बताया गया है। मोक्ष की प्राप्ति का उपाय आत्मतत्व या ब्रह्मतत्व का साक्षात् करना बताया गया है। न्याय दर्शन के अनुसार दु:ख का आत्यंतिक नाश ही मुक्ति या मोक्ष है। सांख्य दर्शन के मत से तीनों प्रकार के तापों का समूल नाश ही मुक्ति या मोक्ष है। वेदान्त दर्शन में पूर्ण आत्मज्ञान द्वारा माया संबंध से रहित होकर अपने शुद्ध ब्रह्म-स्वरूप का बोध प्राप्त करना मोक्ष है। कुल मिलाकर यह है कि सब प्रकार के सुख दु:ख और मोह आदि का छूट जाना ही मोक्ष है। ऐसा बताया गया है कि मोक्ष की कल्पना स्वर्ग-नरक आदि की कल्पना से आगे की कल्पना है। संभवत: यह स्वर्ग की कल्पना के मुकाबले मोक्ष की कल्पना विशिष्ट है। स्वर्गलोक की कल्पना में यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने किए हुए पुण्य वा शुभ कर्म का फल भोगने के बाद फिर इस संसार में

भारतीय दर्शन में सामाजिक-सांस्कृतिक शोषण के खात्में की बातें की जाती है। कई बार सामाजिक सांस्कृतिक शोषण को दया, याचना और तर्कों से खत्म करने की कोशिश होती है। कुल मिलाकर जो सामाजिक-सांस्कृतिक बंधन है उन्हें काटना, तोड़ना ही इस दर्शन का परम उद्देश्य रहता है भले ही वह जमीनी न हो। कुल मिलाकर सुधारवाद ही इस दर्शन का मूल बिंदु है।

आकर जन्म ले; इससे उसे फिर अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ेंगे, किंतु मोक्ष की कल्पना में यह बात नहीं है। मोक्ष मिल जाने पर जीव सदा के लिये सब प्रकार के बंधनों और कष्टों आदि से मुक्त हो जाता है। भारतीय दर्शन में नश्वरता को दु:ख का कारण माना गया है। संसार आवागमन, जन्म-मरण और नश्वरता का केंद्र बताया गया है। इस अविद्याकृत प्रपंच से मुक्ति पाना ही अंतत: मोक्ष है। प्राय: सभी दार्शनिक प्रणालियों ने संसार के दु:खमय स्वभाव को स्वीकार किया है और इससे मुक्त होने के लिये उपासना या भक्तिमय कर्म मार्ग व ज्ञानमार्ग का रास्ता बताया है। मोक्ष इस तरह के जीवन की अंतिम परिणति है। इसे पार-पार्थिक (क्रॉस बॉर्डर) मूल्य मानकर जीवन के परम उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया है। कुल मिलाकर यहां सभी प्रश्नों का समाधान मोक्ष में देखा गया है।

दूसरे किस्म की मुक्ति सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति है। भारतीय दर्शन में सामाजिक-सांस्कृतिक शोषण के खात्में की बातें की जाती है। कई बार सामाजिक सांस्कृतिक शोषण को दया, याचना और तर्कों से खत्म करने की कोशिश होती है। कुल मिलाकर जो सामाजिक-सांस्कृतिक बंधन है उन्हें काटना, तोड़ना ही इस दर्शन का परम उद्देश्य रहता है भले ही वह जमीनी न हो। कुल मिलाकर सुधारवाद ही इस दर्शन का मूल बिंदु है। तीसरे किस्म की मुक्ति आर्थिक-भौतिक शोषण की है। इस दर्शन चिंतन में आर्थिक-भौतिक शोषण व दुखों से मुक्ति का एजेंडा प्रमुख है। इसमें भौतिक दुनिया में व्याप्त दुख-दर्द शोषण-उत्पीड़न से मुक्ति की बात की जाती है। प्रमुख रूप से साम्यवाद और उसका दर्शन इस किस्म की बातें करते हैं। साम्यवादी दर्शन में मुक्ति की परिकल्पना में संरचनात्मक स्तर पर एक समतामूलक वर्गविहीन समाज की स्थापना की बात की गयी है। यहां ऐसा माना जाता है कि ऐतिहासिक और आर्थिक वर्चस्व के प्रतिमान ध्वस्त कर उत्पादन के साधनों पर समूचे समाज का स्वामित्व होगा। अधिकार और कर्तव्य में आत्मार्पित (सरेंडर्ड) सामुदायिक सामंजस्य स्थापित होगा। स्वतंत्रता और समानता के सामाजिक राजनीतिक आदर्श एक दूसरे के पूरक सिद्ध होंगे। न्याय से कोई वंचित नहीं होगा और मानवता एक मात्र जाति होगी। श्रम की संस्कृति सर्वश्रेष्ठ और तकनीक का स्तर सर्वोच्च होगा। हालांकि इसकी सीमाओं संभावनाओं पर भी बहुत सारी गंभीर बातें हुई हैं।

दलित मुक्ति दर्शन की यदि बात की जाए तो दलित मुक्ति दर्शन इन तीनों तरह की मुक्ति का समाहारी दर्शन है। विद्वान लोग समाहारी दर्शन से अर्थ खिचड़ी दर्शन भी लगा सकते हैं। यह कुछ हद तक ऐसा है भी। यह इतना व्यापक व भीमकाय है कि अंधों का हाथी हो गया है। जिसको जो मिला वही उसने समझा या फिर इस संदर्भ में यह कहना ज्यादा सही होगा कि जिसने जो चाहा वही समझा समझाया। मतलब यह कि इस दर्शन में सिर्फ धार्मिक-आध्यात्मिक मुक्ति नहीं है, न सिर्फ सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति है और न ही सिर्फ भौतिक-आर्थिक मुक्ति है बल्कि यह तीनों तरह के शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति की बात करता हुआ दर्शन है। इस अर्थ में कहा जा सकता है कि भारत में मुक्ति दर्शन के संदर्भ में दलित मुक्ति दर्शन ने एक नई जमीन तोड़ी है और उन बातों को बहसतलब बनाया है। यहां ढेरों दार्शनिक चिंतक मिलेंगे जो अलग-अलग छोर पर खड़े हैं, जो कई बार एक-दूसरे के विरोधी भी प्रतीत होते हैं। यहां बुद्ध, कबीर और रैदास हैं, फुले, पेरियार, आंबेडकर और गांधी हैं तो मार्क्स, लेनिन और माओ भी हैं। कुल मिलाकर दलित मुक्ति दर्शन ने अपने आकार, प्रकार व प्रकृति में जो व्यापकता हासिल की

है संभवत: वही उसकी ताकत और कमजोरी दोनों है।

बुद्ध ने हिंदू सामाजिक वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था को नकारा था। एकाधिकारवाद, ब्राह्मणवाद की मुखालफत की थी तथा क्षमता की पहचान की लोकतांत्रिक व्यवस्था की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें ऊंच-नीच राजा-रंक, शोषक-शोषित, छूत-अछूत सभी विभाजनों का निषेध एवं मानवता का वाद महिमामंडित था। इसलिए मान्यता और नकार की प्रगतिशीलता के चलते आगे चलकर यह दर्शन राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आंबेडकर को आकर्षित करता है उनकी ही जीवन-दृष्टि का हिस्सा नहीं बनता बल्कि दलित मुक्ति का भी आधार दर्शन बन जाता है। डॉ. अंबेडकर ने बौद्ध धर्म (धम्म) को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए लिखा कि-'दुनिया का कोई भी अन्य धर्म इसकी तुलना नहीं कर सकता यदि विज्ञान को जानने-समझने वाले किसी आधुनिक व्यक्ति को कोई धर्म ग्रहण करना हो तो वह बुद्ध का धम्म ही हो सकता है'। यहां तक कि एंगेल्स ने भी बौद्धवाद की क्रांतिकारी सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका के संदर्भ में बेहद महत्वपूर्ण बातें कहीं। उन्होंने कहा कि-'महान ऐतिहासिक मोड़ों के साथ धार्मिक परिवर्तनों का आना केवल तीन विश्व धर्मों के साथ ही, जो अब तक जारी रहे हैं, सत्य सिद्ध हुआ है- बुद्ध धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म। आध्यात्मिक-धार्मिक शोषण की शुरुआत, भौतिक चीजों की लूट और आगे चलकर अतिरिक्त (सरप्लस) हड़पने की प्रणाली पर परदा डालने के लिए, उसको जस्टिफाई करने लिए और सत्ता को मजबूत करने लिए हुई। बौद्ध धम्म ने इसको समझा और उसका सैद्धांतिक तार्किक विरोध किया। तब के समय में यह विरोध संभवत: धार्मिक आईने में ही हो सकता था। इसलिए बुद्ध बौद्ध-धम्म (परंपरित अर्थों में धर्म नहीं) की परिकल्पना करते हैं। कुल मिलाकर यह प्रतिरोधात्मक रूप में सामने आया और इसने दलित मुक्ति दर्शन की नींव रखी।

बौद्ध दर्शन के बाद मध्यकाल में दलित मुक्ति दर्शन के विकास विस्तार के संदर्भ में कबीर, रैदास, नानक आदि संतों का नाम भी लिया जाना चाहिए; जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों; बुराइयों और दुनियावी शोषण के खिलाफ बेहद गंभीरता से आवाज उठाई। ऐसे समय में जब बोलना, विरोध करना आसान नहीं रहा होगा उस समय भी कबीर आदि संत जिस भाषा भाव भंगिमा में अपनी बातें पुरजोर तरीके से रखते हैं, वह सामान्य बात नहीं है। दरअसल यह समझा जाना चाहिए कि नगरों के निर्माण की प्रक्रिया में निचली जातियों के उभार ने उनके पलने बढ़ने मजबूत होने में मदद की और संतो को वह ताकत दी जिसका प्रस्फुटन कबीर आदि संतों की वाणी के रूप में हुआ। कबीर उन लोगों में हैं जिन्होंने ज्ञान और सत्ता की खूंखार, जालिम परंपरा के खिलाफ आवाज उठाई थी। यह सही है कि कबीर और अन्य संतों का प्रतिरोध व चिंतन धार्मिक आवरण में ही सामने आया। लेकिन फिर भी यह परंपरित सत्ता पोषित अंध-धार्मिक परंपरा का विरोध प्रतिरोध था जो वैदिक काल से चली आ रही थी। जहां 'कागज की लेखी' पर जोर दिया जा रहा था, उसकी जगह पर कबीर 'आंखिन की देखी' की बात करते हैं और बहुत साफ शब्दों में वैचारिक अलगाव की भी बात करते हैं। वे साफ लहजे में कहते हैं-'मेरा तेरा मनवा, कैसे एक होय रे/ मैं कहता आंखिन की देखी, तू कहता कागज की लेखी/ मैं कहता सुरझावन/ हारी तू राख्या उरझाई रे।' उन्होंने सभी विभाजनों का अस्वीकार करते हुए कहा- एक बूंद ते सृष्टि

बौद्ध दर्शन के बाद मध्यकाल में दलित मुक्ति दर्शन के विकास विस्तार के संदर्भ में कबीर, रैदास, नानक आदि संतों का नाम भी लिया जाना चाहिए; जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों; बुराइयों और दुनियावी शोषण के खिलाफ बेहद गंभीरता से आवाज उठाई। ऐसे समय में जब बोलना, विरोध करना आसान नहीं रहा होगा उस समय भी रैदास, कबीर व नानक आदि संत जिस भाषा भाव भंगिमा में अपनी बातें पुरजोर तरीके से रखते हैं, वह सामान्य बात नहीं है।

रची है; मतलब यह कि इस किस्म के सामाजिक-सांस्कृतिक भेद का कोई जैविक-भौतिक आधार नहीं है इसलिए यह सब बकवास है।

इसी प्रतिरोध की परंपरा पर आधुनिक काल में सामाजिक सांस्कृतिक नवजागरण के अगुवा जोतिबा फुले का दर्शन विकसित हुआ। जोतिबा फुले ने खेतिहर समाज में शोषक शक्तियों की पहचान करते हुए दलित मुक्ति दर्शन को आगे बढ़ाया और मजबूती दी। अपने दर्शन-चिंतन में जोतिबा फुले शोषितों की वैश्विक एकता की बात भी करते हैं और अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी' को अमेरिकी नस्लवाद के शिकार; उसका पुरजोर विरोध करते हुए; लोगों को समर्पित करते हैं। मतलब यह किजोतिबा फुले नस्लवाद और जातिवाद को मानवता के लिए अहितकर मानते हैं और दोनों के खिलाफ संयुक्त प्रतिरोध का रोडमैप बनाते हैं। यहां नोट करने वाली बात यह भी है कि अपने पुरखों की तरह वे इस संदर्भ में जागरण व चेतना की भूमिका स्वीकार करते हैं तथा इसमें आधुनिक शिक्षा की महत्वूर्ण भूमिका देखते हैं इसीलिए इस दिशा में गंभीरता से काम भी करते हैं।

इसी जमीन पर डॉ। अंबेडकर का दर्शन चिंतन विकसित व पुष्पित-पल्लवित हुआ है। हालांकि डॉ. आंबेडकर भारत के ओवररेटेड बुद्धिजीवी हैं जिनका जितना किया हुआ है उससे ज्यादा सेलिब्रेट किया जाता है। संभवत: वे और उनका दर्शन दलित मध्यवर्गीय मानस को ही

अपने दर्शन-चिंतन में जोतिबा फुले शोषितों की वैश्विक एकता की बात भी करते हैं और अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी' को अमेरिकी नस्लवाद के शिकार; उसका पुरजोर विरोध करते हुए; लोगों को समर्पित करते हैं।

नहीं, पूंजीवादी लोकतांत्रिक सत्ता-व्यवस्था को भी खूब सूट करते हैं। उनसे अब शायद ही किसी को इतनी दिक्कत हो कि उन्हें त्याज्य समझे। उनकी खूबी यही है कि वे सर्वग्राह्य हैं; अक्रॉस द इंटेलेक्चुअल बाइनरी सेलिब्रेटेड हैं। इसका कारण संभवत: यही दार्शनिक इंटीग्रेशन जान पड़ता है जिसमें उन्होंने आध्यात्मिक-धार्मिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और भौतिक-आर्थिक तीनों तरह के शोषण से मुक्ति की बातें की हैं। उनके दर्शन में तीनों का समाहार या इंटीग्रेशन मिलता है। आध्यात्मिक-धार्मिक मुक्ति के संदर्भ में देखें तो वे बौद्ध धर्म को अपनाते हैं, उसकी नवीन व्याख्या करते हैं, 'बुद्धा एंड हिस धम्मा' नाम की किताब लिखते हैं। यहां तक की बौद्ध धर्म को व्यवहारिक और आधुनिक बनाने की कोशिश करते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति केसंदर्भ में देखें तो वे सामाजिक-सांस्कृतिक शोषण की जड़ जाति-प्रथा के समूल नाश की बात करते हैं और जाति प्रथा उन्मूलन का दर्शन देते हैं, 'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' लिखते हैं। और भौतिक आर्थिक संकटों से मुक्ति के लिए भारतीय समाजवादी राज्य की परि-कल्पना वाला आर्थिक दर्शन गढ़ते हैं। अपने प्रसिद्ध लेख- 'राज्य और अल्पसंख्यक' में उसकी अवधारणा सामने रखते हैं। इस तरह यदि विकासक्रम में देखा जाए तो डॉ. आंबेडकर के यहां आध्यात्मिक-धार्मिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और भौतिक-आर्थिक तीनों किस्म का मुक्ति चिंतन समाहारी रूप में मिलता है। यह सही है कि वे रैडिकल चिंतक बिल्कुल नहीं हैं बल्कि जीवन व्यवहार में वे गांधी के अहिंसावादी सत्याग्रही और सिद्धांतों में जॉन डिवी के व्यवहारवादी हैं। फिर भी सच यही है कि आज की तारीख में डॉ. आंबेडकर का दर्शन दलित मुक्ति दर्शन का सिंहद्वार है।

यह सही है कि उत्तर-आंबेडकर काल में नई तब्दीलियां आई हैं, संकट बढ़ा है, सत्ता-व्यवस्था और क्रूर हुई है। बदले हुए समय और परिस्थितियों के अनुसार दलित मुक्ति दर्शन को अपने आप को बदलने और पुष्ट करने की जरूरत बढ़ गयी है। नई आर्थिक उदारवादी नीतियों, बढ़ते बिगड़ते सांप्रदायिक माहौल व दक्षिणपंथी राजनीति के लगातार मजबूत होते जाने, ने दलितों समेत अन्य तबकों का जीवन बदतर कर दिया है, नए किस्म के शोषण उत्पीड़न को जन्म और बढ़ावा दिया है, इसीलिए दलित मुक्ति दर्शन की परम्परित भूमि पर भविष्य के दलित मुक्ति चिंतन दर्शन का खाका गढ़ना होगा; उसकी सीमाओं को समझना होगा और संभावनाओं की तलाश करनी होगी।